सनकादि कुमार

भाग्योदयेन बहुजन्मसमर्जितेन
सत्सङ्गमं च लभते पुरुषो यदा वै ।
अज्ञानहेतुकृतमोहमदान्धकार-
नाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः ॥
(श्रीमद्भा० माहात्म्य २ । ७६)

'अनेक जन्मोंके किये हुए पुण्योंसे जब जीवके सौभाग्यका उदय होता है और वह सत्पुरुषका सङ्ग प्राप्त करता है, तब अज्ञानके मुख्य कारणरूप मोह एवं मदके अन्धकारको नाश करके उसके चित्तमें विवेकके प्रकाशका उदय होता है ।'

सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्माजीने जैसे ही रचनाका प्रारम्भ करना चाहा, उनके सकल्प करते ही उनसे चार कुमार उत्पन्न हुए—सनक, सनन्दन, सनातन एवं सनत्कुमार । ब्रह्माजीने सहस्र दिव्य वर्षोंतक तप करके हृदयमें भगवान् शेषशायीका दर्शन पाया था । भगवान्ने ब्रह्माजीको भागवतका मूल-ज्ञान दिया था । इसके पश्चात् ही ब्रह्माजी मानसिक सृष्टिमें लगे थे । ब्रह्माजीका चित्त अत्यन्त पवित्र एवं भगवान्में लगा हुआ था । उस समय सृष्टिकर्ताके अन्तःकरणमें शुद्ध सत्त्वगुण ही था । फलतः उस समय जो चारों कुमार प्रकट हुए, वे शुद्ध सत्त्वगुणके स्वरूप हुए । उनमें रजोगुण तथा तमोगुण था ही नहीं । न तो उनमें प्रमाद, निद्रा, आलस्य आदि थे और न सृष्टिके कार्यमें उनकी प्रवृत्ति थी । ब्रह्माजीने उन्हें सृष्टि करनेको कहा तो उन्होंने सृष्टिकर्ताकी यह आज्ञा स्वीकार नहीं की । विश्वमें ज्ञानकी परम्पराको बनाये रखनेके लिये स्वयं भगवान्ने ही इन चारों कुमारोंके रूपमें अवतार धारण किया था । कुमारोंकी जन्मजात रुचि भगवान्के नाम तथा गुणका कीर्तन करने, भगवान्की लीलाओंका वर्णन करने एवं उन पावन लीलाओंको सुननेमें थी । भगवान्को छोड़कर एक क्षणके लिये भी उनका चित्त ससारके किसी विषयकी ओर जाता ही नहीं । ऐसे सहज स्वभावसिद्ध विरक्त भला कैसे सृष्टिकार्यमें कब लग सकते थे ?

उनके मुखसे निरन्तर 'हरिः शरणम्' यह मङ्गलमय मन्त्र निकलता रहता है । वाणी इसके जपसे कभी विराम लेती ही नहीं । चित्त सदा श्रीहरिमें लगा रहता है । इसका फल है कि चारों कुमारोंपर कालका कभी कोई प्रभाव नहीं पड़ता । वे सदा पाँच वर्षकी अवस्थाके ही बने रहते हैं । भूख प्यास, सर्दी-गरमी, निद्रा आलस्य—कोई भी मायाका विकार उनको स्पर्शतक नहीं कर पाता । वैसे तो कुमारोंका अधिक निवास धाम जनलोक है—जहाँ विरक्त, मुक्त, भगवद्भक्त तपस्वी-जन ही निवास करते हैं । उस लोकमें सभी नित्यमुक्त हैं । परंतु वहाँ सब-के-सब भगवान्के दिव्य गुण एवं मङ्गलमय चरित सुननेके लिये सदा उत्कण्ठित रहते हैं । वहाँ सदा सर्वदा अखण्ड सत्सङ्ग चलता ही रहता है । किसीको भी वक्ता बनाकर वहाँके शेष लोग बड़ी श्रद्धासे उसकी सेवा करके नम्रतापूर्वक उससे भगवान्का दिव्य चरित सुनते ही रहते हैं । परन्तु सनकादि कुमारोंका तो जीवन ही सत्सङ्ग है । वे तो सत्सङ्गके बिना एक क्षण रह नहीं सकते । मुखसे भगवन्नामका जप, हृदयमें भगवान्का ध्यान, बुद्धिमें व्यापक भगवत्तत्त्वकी स्थिति और श्रवणोंमें भगवद्गुणानुवाद—बस, यही उनकी सर्वदाकी दिनचर्या है ।

चारों कुमारोंकी गति सभी लोकोंमें अबाध है । वे नित्य पञ्चवर्षीय दिगम्बर कुमार इच्छानुसार विचरण करते रहते हैं । पातालमें भगवान् शेषके समीप और कैलासपर भगवान् शङ्करके समीप वे बहुत अधिक रहते हैं । भगवान् शेष एवं शङ्करजीके मुखसे भगवान्के गुण एवं चरित सुनते रहनेमें उनकी कभी तृप्ति ही नहीं होती । जनलोकमें अपनेमेंसे ही किसीको वक्ता बनाकर भी वे श्रवण करते हैं । कभी-कभी किसी परम अधिकारी भगवद्भक्तपर कृपा करनेके लिये वे पृथ्वीपर भी पधारते हैं । महाराज पृथुको उन्होंने ही तत्त्वज्ञानका उपदेश किया । देवर्षि नारदजीने भी कुमारोंसे श्रीमद्भागवत का श्रवण किया । अन्य भी अनेक महाभाग कुमारोंके दर्शनसे एवं उनके उपदेशामृतसे कृतार्थ हुए हैं । भगवान् विष्णुके द्वाररक्षक जय विजय कुमारोंका अपमान करनेके कारण वैकुण्ठसे भी च्युत हुए और तीन जन्मोंतक उन्हें आसुरी योनि मिलती रही ।

सत संगति मुद मंगल मूला । सोइ फल सिधि सब साधन फूला ॥

सनकादि चारों कुमार भक्तिमार्गके मुख्याचार्य हैं । सत्सङ्गके वे मुख्य आराधक हैं । श्रवणमें उनकी गाढ़तम निष्ठा है । ज्ञान, वैराग्य, नाम-जप एवं भगवच्चरित्र सुननेकी अबाध उत्कण्ठाका आदर्श ही उनका स्वरूप है ।

देवर्षि नारद

प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः ।
आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ॥
(श्रीमद्भा० १ । ६ । ३४)

स्वयं देवर्षि नारदजीने अपनी स्थितिके विषयमें कहा है—'जब मैं उन परमपावनचरण उदारश्रवा प्रभुके गुणोंका गान करने लगता हूँ, तब वे प्रभु अविलम्ब मेरे चित्तमें बुलाये हुएकी भाँति तुरत प्रकट हो जाते हैं।'

श्रीनारदजी नित्य परिव्राजक हैं। उनका काम ही है—अपनी वीणाकी मनोहर झंकारके साथ भगवान्‌के गुणोंका गान करते हुए सदा पर्यटन करना। वे कीर्तनके परमाचार्य हैं, भागवतधर्मके प्रधान बारह आचार्योंमें हैं और भक्ति-सूत्रके निर्माता भी हैं, साथ ही उन्होंने प्रतिज्ञा भी की है—सम्पूर्ण पृथ्वीपर घर-घर एवं जन-जनमें भक्तिकी स्थापना करनेकी। निरन्तर वे भक्तिके प्रचारमें ही लगे रहते हैं।

पूर्व कल्पमें नारदजी उपबर्हण नामके गन्धर्व थे। बड़े ही सुन्दर थे शरीरसे। और अपने रूपका गर्व भी था उन्हें। एक बार भगवान् ब्रह्माके यहाँ सभी गन्धर्व, किन्नर आदि भगवान्‌का गुण-कीर्तन करने एकत्र हुए। उस समूहमें उपबर्हण स्त्रियोंको साथ लेकर गये। जहाँ भगवान्‌में चित्त लगाकर उन मङ्गलमयके गुणगानसे अपनेको और दूसरोंको भी पवित्र करना चाहिये, वहाँ कोई स्त्रियोंको लेकर शृङ्गारके भावसे जाय और कामियोंकी भाँति चटक-मटक करे, यह बहुत बड़ा अपराध है। ब्रह्माजीने उपबर्हणका यह प्रमाद देखकर उन्हें शूद्रयोनिमें जन्म लेनेका शाप दे दिया।

महापुरुषोंका क्रोध भी जीवके कल्याणके लिये ही होता है। ब्रह्माजीने गन्धर्व उपबर्हणपर कृपा करके ही शाप दिया था। उस शापके फलसे वे सदाचारी, संयमी, वेदवादी ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवाली शूद्रा दासीके पुत्र हुए। भगवान् ब्रह्माकी कृपासे बचपनसे ही उनमें धीरता, गम्भीरता, सरलता, समता, शील आदि सद्गुण आ गये। उस दासीके और कोई नहीं रह गया था। वह अपने एकमात्र पुत्रसे बहुत ही स्नेह करती थी। जब बालककी अवस्था पाँच वर्षके लगभग थी, तब कुछ योगी संतोंने वर्षाऋतुमें एक जगह चातुर्मास्य किया। बालककी माता उन साधुओंकी सेवामें लगी रहती थी। वहीं वे भी उनकी सेवा करते थे। स्वयं नारदजीने भगवान् व्यासमे कहा है—'व्यासजी! उस समय यद्यपि मैं बहुत छोटा था, फिर भी मुझमें चञ्चलता नहीं थी, मैं जितेन्द्रिय था, दूसरे सब खेल छोड़कर साधुओंके आज्ञानुसार उनकी सेवामें लगा रहता था। वे संत भी मुझे भोला-भाला शिशु जानकर मुझपर बड़ी कृपा करते थे। मैं शूद्र-बालक था और उन ब्राह्मण-संतोंकी अनुमतिसे उनके बर्तनोंमें लगा हुआ अन्न दिनमें एक बार खा लिया करता था। इससे मेरे हृदयका सब कल्मष दूर हो गया। मेरा चित्त शुद्ध हो गया। संत जो परस्पर भगवान्‌की चर्चा करते थे, उसे सुननेमें मेरी रुचि हो गयी।'

चातुर्मास्य करके जब वे साधुगण जाने लगे, तब उस दासीके बालककी दीनता, नम्रता आदि देखकर उसपर उन्होंने कृपा की। बालकको उन्होंने भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान तथा नामके जपका उपदेश किया। साधुओंके चले जानेके कुछ समय पश्चात् वह शूद्रा दासी रातको अँधेरेमें अपने स्वामी ब्राह्मणदेवताकी गाय दुह रही थी कि उसे पैरमें सर्पने काट लिया। सर्पके काटनेसे उसकी मृत्यु हो गयी। नारदजीने माताकी मृत्युको भी भगवान्‌की कृपा ही समझा। स्नेहवश माता उन्हें कहीं जाने नहीं देती थी। माताका वात्सल्य भी एक बन्धन ही था, जिसे भक्तवत्सल प्रभुने दूर कर दिया। पाँच वर्षकी अवस्था थी, न देशका पता था और न कालका। नारदजी दयामय विश्वम्भरके भरोसे ठीक उत्तरकी ओर वनके मार्गसे चल पड़े और बढ़ते ही गये। बहुत दूर जाकर जब वे थक गये, तब एक सरोवरका जल पीकर उसके किनारे पीपलके नीचे बैठकर, साधुओंने जैसा बताया था वैसे ही, भगवान्‌का ध्यान करने लगे। ध्यान करते समय एक क्षणके लिये सहसा हृदयमें भगवान् प्रकट हो गये। नारदजी आनन्दमग्न हो गये। परंतु वह दिव्य झाँकी तो विद्युत्‌की भाँति आयी और चली गयी। अत्यन्त व्याकुल हो बार-बार नारदजी उसी झाँकीको पुनः पानेका प्रयत्न करने लगे। बालकको बहुत ही व्याकुल होते देख आकाशवाणीने आश्वासन देते हुए बतलाया—'इस जन्ममें तुम मुझे देख नहीं सकते। जिनका चित्त पूर्णतः निर्मल नहीं है, वे मेरे दर्शनके अधिकारी नहीं। यह एक झाँकी मैंने तुम्हें कृपा करके इसलिये दिखलायी कि इसके दर्शनसे तुम्हारा चित्त मुझमें लग जाय।'

नारदजीने वहाँ भूमिमें मस्तक रखकर दयामय प्रभुके प्रति प्रणाम किया और वे भगवान्का गुण गाते हुए पृथ्वी पर घूमने लगे। समय आनेपर उनका वह शरीर छूट गया। उस कल्पमें उनका फिर जन्म नहीं हुआ। कल्पान्तमें वे ब्रह्माजीमें प्रविष्ट हो गये और सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्माजीके मनसे प्रकट हुए। वे भगवान्के मनके अवतार हैं। दयामय भक्तवत्सल प्रभु जो कुछ करना चाहते हैं, देवर्षिके द्वारा वैसी ही चेष्टा होती है।

प्रह्लादजी जब माताके गर्भमें थे, तभी गर्भस्थ बालकको लक्ष्य करके देवर्षिने उन दैत्यसाम्राज्ञीको उपदेश किया था। देवर्षिकी कृपासे प्रह्लादजीको वह उपदेश भूला नहीं। उसी ज्ञानके कारण प्रह्लादजीमें इतना दृढ भगवद्विश्वास हुआ। इसी प्रकार ध्रुव जब सौतेली माताके वचनोंसे रूठकर वनमें तप करने जा रहे थे, तब मार्गमें उन्हें नारदजी मिले। नारदजीने ही ध्रुवको मन्त्र देकर उपासनाकी पद्धति बतलायी। प्रजापति दक्षके हर्यश्व नामक दस सहस्र पुत्र पिताकी आज्ञासे सृष्टिविस्तारके लिये तप कर रहे थे। देवर्षिने देखा कि ये शुद्धहृदय बालक तो भगवत्प्राप्तिके अधिकारी हैं, अतः उन्हें उपदेश देकर नारदजीने सबको विरक्त बना दिया। दक्ष इस समाचारसे बहुत दुखी हुए। उन्होंने दूसरी बार एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये। ये शबलाश्व नामक दक्षपुत्र भी तपमें लगे और इन्हें भी कृपा करके देवर्षिने भगवन्मार्गपर अग्रसर कर दिया। प्रजापति दक्षको जब यह समाचार मिला, तब वे अत्यन्त क्रोधित हुए। उन्होंने देवर्षिको शाप दिया कि 'तुम दो घडीसे अधिक कहीं ठहर नहीं सकोगे।' नारदजीने शापको सहर्ष स्वीकार कर लिया। उन्हें इसमें तनिक भी क्षोभ नहीं हुआ, क्योंकि वे तो इसे अपने आराध्य प्रभुकी इच्छा समझकर सन्तुष्ट हो रहे थे।

देवर्षि नारदजी वेदान्त, योग, ज्यौतिष, वैद्यक, सङ्गीत-शास्त्रादि अनेक विद्याओंके आचार्य हैं और भक्तिके तो वे मुख्याचार्य हैं। उनका पाञ्चरात्र भागवत मार्गका मुख्य ग्रन्थ है। देवर्षिने कितने लोगोंपर कब कैसे कृपा की है, इसकी गणना कोई नहीं कर सकता। वे कृपाकी ही मूर्ति हैं। जीवोंपर कृपा करनेके लिये वे निरन्तर त्रिलोकीमें घूमते रहते हैं। उनका एक ही व्रत है कि जो भी मिल जाय, उसे चाहे जैसे हो, भगवान्के श्रीचरणोंतक पहुँचा दिया जाय। जो जैसा अधिकारी होता है, उसे वे वैसा मार्ग बतलाते हैं। प्रह्लाद तथा ध्रुवको उनके अनुसार और हिरण्यकशिपु तथा कंसको उनके अनुसार मार्ग उन्होंने बताया। उनका उद्देश्य रहता है कि जीव जल्दी-से जल्दी भगवान्को प्राप्त करे। देवर्षि ही एकमात्र ऐसे हैं जिनका सभी सुर, असुर समानरूपसे आदर करते रहे हैं। सभी उनको अपना हितैषी मानते रहे हैं और वे सचमुच सबके सच्चे हितैषी हैं।

भगवान् व्यास जब वेदोंका विभाजन तथा महाभारतकी रचना करके भी प्राणियोंकी कल्याण कामनासे खिन्न हो रहे थे, तब उन्हें भागवत तत्त्वका उपदेश करते हुए नारदजीने बताया—'वह वाणी वाणी नहीं है, जिसके विचित्र पदोंमें त्रिभुवनपावन श्रीहरिके यशोंका वर्णन न हुआ हो। वह कौओंका तीर्थ है, जहाँ मानसरोवरविहारी सुशिक्षित हंस क्रीडा नहीं करते अर्थात् जैसे घृणित विष्ठापर चोंच मारनेवाले कौओंके समान मलिन विषयानुरागी कामी मनुष्योंका मन उस वाणीमें रमता है, वैसा मानसरोवरमें विहरण करनेवाले राजहंसोंके समान परमहंस भागवतोंका मन उसमें कभी नहीं रमता। उस वाणीको बोलना तो संसारपर वज्रपात करनेके समान तथा लोगोंको पापमग्न करनेवाला है, जिसके प्रत्येक पदमें भगवान्के वे मङ्गलमय नाम एवं यश नहीं हैं, जिनको साधुजन सुनते हैं, गाते हैं और वर्णन करते हैं। भगवान्की भक्ति भावनासे शून्य निर्मल निरञ्जन नैष्कर्म्य ज्ञान भी शोभा नहीं देता, फिर वह सदा अकल्याणकारी कर्म तो कैसे शोभा दे सकता है, जो निष्कामभावसे भगवान्को समर्पित नहीं कर दिया गया है।'

भगवान् श्रीकृष्णने नारदजीके गुणोंकी प्रशंसा करते हुए एक बार राजा उग्रसेनसे कहा था—

अहं हि सर्वदा स्तौमि नारदं देवदर्शनम्।
महेन्द्रगदितेनैव स्तोत्रेण शृणु तन्नृप॥
उत्सङ्गाद्ब्रह्मणो जातो यस्याहन्ता न विद्यते।
अगुप्तश्रुतिचारित्रं नारदं तं नमाम्यहम्॥
अरतिः क्रोधचापल्ये भयं नैतानि यस्य च।
अदीर्घसूत्रं तं धीरं नारदं प्रणमाम्यहम्॥
कामाद्वा यदि वा लोभाद् वाचं यो नान्यथा वदेत्।
उपास्यं सर्वजन्तूनां नारदं तं नमाम्यहम्॥
अध्यात्मगतितत्त्वज्ञं ज्ञानशक्तिं जितेन्द्रियम्।
ऋजुं यथार्थवक्तारं नारदं तं नमाम्यहम्॥

तेजसा यशसा बुद्ध्या नयेन विनयेन च।
जन्मना तपसा वृद्धं नारदं प्रणमाम्यहम्॥
सुखशीलं सुसंवेषं सुभोजं भास्वरं शुचिम्।
सुचक्षुषं सुवाक्यं च नारदं प्रणमाम्यहम्॥
कल्याणं कुरुते बाढं पापं यस्मिन्न विद्यते।
न प्रीयते परार्थेन योऽसौ तं नौमि नारदम्॥
वेदस्मृतिपुराणोक्तं धर्मं यो नित्यमास्थितः।
प्रियाप्रियविमुक्तं तं नारदं प्रणमाम्यहम्॥
अशनादिष्वलिप्तं च पण्डितं नालसं द्विजम्।
बहुश्रुतं चित्रकथं नारदं प्रणमाम्यहम्॥
नार्थे क्रोधे च कामे च भूतपूर्वोऽस्य विभ्रमः।
येनैते नाशिता दोषा नारदं तं नमाम्यहम्॥
वीतसम्मोहदोषो यो दृढभक्तिश्च श्रेयसि।
सुनयं सत्रपं तं च नारदं प्रणमाम्यहम्॥
असक्तः सर्वसङ्गेषु यः सक्तात्मेव लक्ष्यते।
अदीर्घसंशयो वाग्मी नारदं प्रणमाम्यहम्॥
नासूयत्यागमं किञ्चित् तपःकृत्येन जीवति।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा तमहं नौमि नारदम्॥
कृतश्रमं कृतप्रज्ञं न च तृप्तं समाधितः।
नित्ययत्नाप्रमत्तं च नारदं तं नमाम्यहम्॥
न हृष्यत्यर्थलाभेन योऽलाभे न व्यथत्यपि।
स्थिरबुद्धिरसक्तात्मा तमहं नौमि नारदम्॥
तं सर्वगुणसम्पन्नं दक्षं शुचिमकातरम्।
कालज्ञं च नयज्ञं च शरणं यामि नारदम्॥
इमं स्तवं नारदस्य नित्यं राजन् जपाम्यहम्।
तेन मे परमां प्रीतिं करोति मुनिसत्तमः॥
अन्योऽपि यः शुचिर्भूत्वा नित्यमेतां स्तुतिं जपेत्।
अचिरात्तस्य देवर्षिः प्रसादं कुरुते परम्॥
एतान् गुणान्नारदस्य त्वमप्याकर्ण्य पार्थिव।
जप नित्यं स्तवं पुण्यं प्रीतस्ते भविता मुनिः॥

(स्कन्द० माहे० कुमारिका० ५४।२७—४६)

"मैं देवराज इन्द्रद्वारा किये गये स्तोत्रसे दिव्यदृष्टिसम्पन्न श्रीनारदजीकी सदा स्तुति करता हूँ। वह स्तोत्र श्रवण कीजिये—

'जो ब्रह्माजीकी गोदसे प्रकट हुए हैं, जिनके मनमें अहङ्कार नहीं है, जिनका शास्त्र-ज्ञान और चरित्र किसीसे छिपा नहीं है, उन देवर्षि नारदको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनमें अरति (उद्वेग), क्रोध, चपलता और भयका सर्वथा अभाव है, जो धीर होते हुए भी दीर्घसूत्री (किसी कार्यमें अधिक विलम्ब करनेवाले) नहीं हैं, उन नारदजीको मैं प्रणाम करता हूँ। जो कामना अथवा लोभवश झूठी बात मुँहसे नहीं निकालते और समस्त प्राणी जिनकी उपासना करते हैं, उन नारदजीको मैं नमस्कार करता हूँ। जो अध्यात्मगतिके तत्त्वको जाननेवाले, ज्ञानशक्तिसम्पन्न तथा जितेन्द्रिय हैं, जिनमें सरलता भरी है तथा जो यथार्थ बात कहनेवाले हैं, उन नारदजीको मैं प्रणाम करता हूँ। जो तेज, यश, बुद्धि, नय, विनय, जन्म तथा तपस्या सभी दृष्टियोंसे बढ़े हुए हैं, उन नारदजीको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनका स्वभाव सुखमय, वेष सुन्दर तथा भोजन उत्तम है, जो प्रकाशमान, पवित्र, शुभदृष्टिसम्पन्न तथा सुन्दर वचन बोलनेवाले हैं, उन नारदजीको मैं प्रणाम करता हूँ। जो उत्साहपूर्वक सबका कल्याण करते हैं, जिनमें पापका लेश भी नहीं है तथा जो परोपकार करनेसे कभी अघाते नहीं हैं, उन नारदजीको मैं नमस्कार करता हूँ। जो सदा वेद, स्मृति और पुराणोंमें बताये हुए धर्मका आश्रय लेते हैं तथा प्रिय और अप्रियसे रहित हैं, उन नारदजीको मैं प्रणाम करता हूँ। जो खान-पान आदि भोगोंमें कभी लिप्त नहीं होते हैं, जो पण्डित आलस्यरहित तथा बहुश्रुत ब्राह्मण हैं, जिनके मुखसे अद्भुत बातें—विचित्र कथाएँ सुननेको मिलती हैं, उन नारदजीको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्हें अर्थ (धन) के लोभ, काम अथवा क्रोधके कारण भी पहले कभी भ्रम नहीं हुआ है, जिन्होंने इन (काम, क्रोध और लोभ) तीनों दोषोंका नाश कर दिया है, उन नारदजीको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके अन्तःकरणसे सम्मोहरूप दोष दूर हो गया है, जो कल्याणमय भगवान् और भागवतधर्ममें दृढ भक्ति रखते हैं, जिनकी नीति बहुत उत्तम है तथा जो सङ्कोची स्वभावके हैं, उन नारदजीको मैं प्रणाम करता हूँ। जो समस्त सङ्गोंसे अनासक्त हैं, तथापि सबमें आसक्त हुए-से दिखायी देते हैं, जिनके मनमें किसी संशयके लिये स्थान नहीं है, जो बड़े अच्छे वक्ता हैं, उन नारदजीको मैं नमस्कार करता हूँ। जो किसी भी शास्त्रमें दोषदृष्टि नहीं करते, तपस्याका अनुष्ठान ही जिनका जीवन है, जिनका समय कभी भगवच्चिन्तनके बिना व्यर्थ नहीं जाता और जो अपने मनको सदा वशमें रखते हैं, उन श्रीनारदजीको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने तपके लिये श्रम किया है, जिनकी बुद्धि पवित्र एवं वशमें है, जो समाधिसे कभी तृप्त नहीं होते, अपने प्रयत्नमें सदा सावधान

रहनेवाले उन नारदजीको मैं नमस्कार करता हूँ । जो अर्थ-लाभ होनेसे हर्ष नहीं मानते और लाभ न होनेपर मनमें क्लेशका अनुभव नहीं करते, जिनकी बुद्धि स्थिर तथा आत्मा अनासक्त है, उन नारदजीको मैं नमस्कार करता हूँ । जो सर्वगुणसम्पन्न, दक्ष, पवित्र, कातरतारहित, कालज्ञ और नीतिज्ञ हैं, उन देवर्षि नारदको मैं भजता हूँ ।'

नारदजीके इस स्तोत्रका मैं नित्य जप करता हूँ । इससे वे मुनिश्रेष्ठ मुझपर अधिक प्रेम रखते हैं । दूसरा कोई भी यदि पवित्र होकर प्रतिदिन इस स्तुतिका पाठ करता है तो देवर्षि नारद बहुत शीघ्र उसपर अपना अतिशय कृपाप्रसाद प्रकट करते हैं । राजन् ! आप भी नारदजीके इन गुणोंको सुनकर प्रतिदिन इस पवित्र स्तोत्रका जप करें, इससे वे मुनि आपपर बहुत प्रसन्न होंगे ।"

देवर्षि नारदजीका स्तवन करके भगवान् कई रहस्योंको खोलते हैं—(१) भक्तोंमें कैसे आदर्श गुण होने चाहिये । (२) भक्तोंके गुणोंका स्मरण करनेसे मनुष्य उनका प्रीति-भाजन होता है और उसमें भी वे गुण आते हैं । (३) भक्तके गुण स्मरणसे अन्तःकरण पवित्र होता है । (४) भक्तकी इतनी महिमा है कि स्वयं भगवान् भी उसकी स्तुति-भक्ति करते हैं और (५) भक्तकी स्मृति तथा गुणचर्चासे जगत्का मङ्गल होता है, क्योंकि भक्तोंके गुणोंको धारण करनेसे ही जगत्के अमङ्गलोंका नाश तथा मङ्गलोंकी प्राप्ति होती है । गुणोंका धारण-स्मरण कथा-चर्चाके बिना होता नहीं । ऐसे परमपुण्यजीवन देवर्षिके चरणोंमें हमारे अनन्त प्रणाम ।

महर्षि अगस्त्य और राजा शङ्ख

यह वर मागउँ कृपानिकेता । बसहु हृदयँ श्री अनुज समेता ॥
अबिरल भगति बिरति मनसंगा । चरन सरोरुह प्रीति अभंगा ॥

(अगस्त्यजी)

महर्षि अगस्त्य वेदोंके एक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। इनकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें विभिन्न प्रकारकी कथाएँ मिलती हैं। कहीं मित्रावरुणके द्वारा वसिष्ठके साथ घड़ेमें पैदा होनेकी बात आती है तो कहीं पुलस्त्यकी पत्नी हविर्भूके गर्भसे विश्रवाके साथ इनकी उत्पत्तिका वर्णन आता है। किसी किसी ग्रन्थके अनुसार स्वायम्भुव मन्वन्तरमें पुलस्त्यतनय दत्तोलि ही अगस्त्यके नामसे प्रसिद्ध हुए। ये सभी बातें कल्पभेदसे ठीक उतरती हैं। इनके विशाल जीवनकी समस्त घटनाओंका वर्णन नहीं किया जा सकता। यहाँ संक्षेपतः दो-तीन घटनाओंका उल्लेख किया जाता है।

एक बार जब इन्द्रने वृत्रासुरको मार डाला, तब कालेय नामके दैत्योंने समुद्रका आश्रय लेकर ऋषियों-मुनियोंका विनाश करना शुरू किया। वे दैत्य दिनमें तो समुद्रमें रहते और रातको निकलकर पवित्र जगहोंमें रहनेवाले ऋषियोंको खा जाते। उन्होंने वसिष्ठ, च्यवन, भरद्वाज—सभीके आश्रमोंपर जा-जाकर हजारोंकी संख्यामें ऋषि मुनियोंका भोजन किया था। अब देवताओंने महर्षि अगस्त्यकी शरण ग्रहण की। उनकी प्रार्थनासे और लोगोंकी व्यथा तथा हानि देखकर उन्होंने अपने एक चुल्लूमें ही सारे समुद्रको पी लिया। तब देवताओंने जाकर कुछ दैत्योंका वध किया और कुछ भागकर पाताल चले गये।

एक बार ब्रह्महत्याके कारण इन्द्रके स्थानच्युत हो जानेपर राजा नहुष इन्द्र हुए थे। इन्द्र होनेपर अधिकारके मदमें मत्त होकर उन्होंने इन्द्राणीको अपनी पत्नी बनानेकी चेष्टा की। तब बृहस्पतिकी सम्मतिसे इन्द्राणीने उन्हें एक ऐसी सवारीसे अपने समीप आनेकी बात कही, जिसपर अबतक कोई सवार न हुआ हो। मदमत्त नहुषने सवारी ढोनेके लिये ऋषियोंको ही बुलाया। ऋषियोंको तो सम्मान-अपमानका कुछ खयाल था ही नहीं, आकर सवारीमें जुत गये। जब सवारीपर चढ़कर नहुष चले, तब शीघ्रातिशीघ्र पहुँचनेके लिये हाथमें कोड़ा लेकर 'जल्दी चलो! जल्दी चलो!' ('सर्प-सर्प') कहते हुए उन ब्राह्मणोंको विताडित करने लगे। यह बात महर्षि अगस्त्यसे देखी नहीं गयी। वे इसके मूलमें नहुषका अधःपतन और ऋषियोंका कष्ट देख रहे थे। उन्होंने नहुषको उसके पापोंका उचित दण्ड दिया। शाप देकर उसे एक महाकाय सर्प बना दिया और इस प्रकार समाजकी मर्यादा सुरक्षित रक्खी तथा धन-मद और पद-मदके कारण अन्धे लोगोंकी आँखें खोल दीं।

भगवान् श्रीराम वनगमनके समय इनके आश्रमपर पधारे थे और इन्होंने बड़ी श्रद्धा, भक्ति एवं प्रेमसे उनका सत्कार किया और उनके दर्शन, आलाप तथा संसर्गसे अपने ऋषि-

जीवनको सफल किया । साथ ही ऋषिने उन्हें कई प्रकारके शस्त्रास्त्र दिये और सूर्योपस्थानकी पद्धति बतायी । लङ्काके युद्धमें उनका उपयोग करके स्वयं भगवान् श्रीरामने उनके महत्त्वकी अभिवृद्धि की । इन्होंने भगवान् श्रीराघवेन्द्रका जो महत्त्वपूर्ण स्तवन किया है, उसका कुछ अंश अध्यात्मरामायण-से यहाँ उद्धृत किया जाता है—

लोके त्वद्भक्तिनिरतास्त्वन्मन्त्रोपासकाश्च ये ।
विद्या प्रादुर्भवेत्तेषां नेतरेषां कदाचन ॥
अतस्त्वद्भक्तिसम्पन्ना मुक्ता एव न संशयः ।
त्वद्भक्त्यमृतहीनानां मोक्षः स्वप्नेऽपि नो भवेत् ॥
किं राम बहुनोक्तेन सारं किंचिद्ब्रवीमि ते ।
साधुसंगतिरेवात्र मोक्षहेतुरुदाहृता ॥
साधवः समचित्ता ये निःस्पृहा विगतैषिणः ।
दान्ताः प्रशान्तास्त्वद्भक्ता निवृत्ताखिलवासनाः ॥
इष्टप्राप्तिविपत्त्योश्च समाः संगविवर्जिताः ।
संन्यस्ताखिलकर्माणः सर्वदा ब्रह्मतत्पराः ॥
यमादिगुणसम्पन्नाः संतुष्टा येन केनचित् ।
सत्संगमो भवेद्यर्हि त्वत्कथाश्रवणे रतिः ॥
समुदेति ततो भक्तिस्त्वयि राम सनातने ।
त्वद्भक्तावुपपन्नायां विज्ञानं विपुलं स्फुटम् ॥
उदेति मुक्तिमार्गोऽयमाद्यश्चतुरसेवितः ।
तस्माद्राघव सद्भक्तिस्त्वयि मे प्रेमलक्षणा ॥
सदा भूयाद्धरे संगस्त्वद्भक्तेषु विशेषतः ।
अद्य मे सफलं जन्म भवत्संदर्शनादभूत् ॥
अद्य मे क्रतवः सर्वे बभूवुः सफलाः प्रभो ॥
सदा मे सीतया सार्धं हृदये वस राघव ।
गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्मृतिः स्यान्मे सदा त्वयि ॥

(अरण्यकाण्ड ३ । ३४-४४)

'संसारमें जो लोग आपकी भक्तिमें तत्पर और आपके ही मन्त्रकी उपासना करनेवाले हैं, उन्हींके अन्तःकरणमें विद्याका प्रादुर्भाव होता है, और किसीके कभी नहीं होता । अतः जो पुरुष आपकी भक्तिसे सम्पन्न हैं वे निस्संदेह मुक्त ही हैं । आपकी भक्तिरूप अमृतके बिना स्वप्नमें भी मोक्ष नहीं हो सकता । रामभद्र ! और अधिक क्या कहूँ ? इस विषयमें जो सार बात है, वह आपको बताये देता हूँ—संसारमें साधुसंग ही मोक्षका कारण है । संसारमें जो लोग संपद्-विपद्में समानचित्त, स्पृहारहित, पुत्र-वित्तादिकी एषणासे रहित, इन्द्रियोंका दमन करनेवाले, शान्तचित्त, आपके भक्त, सम्पूर्ण कामनाओंसे शून्य, इष्ट तथा अनिष्टकी प्राप्तिमें सम रहनेवाले, आसक्तिरहित, समस्त कर्मोंका मनसे त्याग करनेवाले, सर्वदा ब्रह्मपरायण रहनेवाले, यम आदि गुणोंसे सम्पन्न तथा जो कुछ मिल जाय, उसीमें संतुष्ट रहनेवाले होते हैं, वे ही साधु कहलाते हैं । जिस समय ऐसे साधु पुरुषोंका संग होता है, तब आपकी कथा-श्रवणमें प्रेम हो जाता है । तदनन्तर हे राम ! आप सनातन पुरुषमें भक्ति हो जाती है, तथा आपकी भक्ति हो जानेपर आपका विशद स्फुट ज्ञान प्राप्त होता है—यही चतुर-जनसेवित मुक्तिका आद्यमार्ग है । अतः राघव ! आपमें मेरी सदा प्रेमलक्षणा भक्ति बनी रहे । मुझे अधिकतर आपके भक्तोंका संग प्राप्त हो । नाथ ! आज आपके दर्शनसे मेरा जन्म सफल हो गया । हे प्रभो ! आज मेरे सम्पूर्ण यज्ञ सफल हो गये । हे राघव ! सीताके सहित आप सर्वदा मेरे हृदयमें निवास करें, मुझे चलते-फिरते तथा खड़े होते सदा आपका स्मरण बना रहे ।

प्रेमभक्तिके मूर्तिमान् स्वरूप भक्त सुतीक्ष्ण इन्हींके शिष्य थे ; उनकी तन्मयता और प्रेमके स्मरणसे आज भी लोग भगवान्‌की ओर अग्रसर होते हैं । लङ्कापर विजय प्राप्त करके जब भगवान् श्रीराम अयोध्याको लौट आये और उनका राज्याभिषेक हुआ, तब महर्षि अगस्त्य वहाँ आये और उन्होंने भगवान् श्रीरामको अनेकों प्रकारकी कथाएँ सुनायीं । वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डकी अधिकांश कथाएँ इन्हींके द्वारा कही हुई हैं । इन्होंने उपदेश और सत्कर्मके द्वारा जगत्‌का बड़ा कल्याण किया । इनके द्वारा रचित अगस्त्यसंहिता नामका एक उपासना-सम्बन्धी बड़ा सुन्दर ग्रन्थ है । जिज्ञासुओंको उसका अवलोकन करना चाहिये ।

एक बार स्वामिपुष्करिणीके तटपर राजा शङ्खके साथ इनको भगवान् विष्णुके दिव्य दर्शन हुए थे, वह इतिहास संक्षेपमें इस प्रकार है—

हैहयवंशके नीतिज्ञ, प्रजावत्सल धर्मात्मा राजा शङ्ख सदा अपने मनको भगवान्‌में लगाये रहते थे । वे राजा श्रुताभिधानके पुत्र थे । धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करनेके साथ नियमितरूपसे वे भगवान्‌का पूजन एवं ध्यान करते थे । बिना किसी प्रकारकी कामनाके केवल भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये वे बराबर पुण्य, दान, व्रत तथा बड़ी बड़ी दक्षिणाओंसे युक्त यज्ञ किया करते थे । उन्होंने यश तथा स्वर्ग पानेकी इच्छाको सर्वथा त्यागकर केवल भगवान्‌को सन्तुष्ट करनेके लिये स्थान-स्थानपर कुएँ, बावली, धर्मशाला आदि बनवायी थीं । विद्वान् ब्राह्मणोंसे वे भगवान्‌के मङ्गलमय चरित सुना करते थे ।

भगवान्‌के लिये पर्वोंपर धूमधामसे महोत्सव करते थे। भगवन्नामका कीर्तन, भगवान्‌का स्मरण—यही उनके परम प्रिय कार्य थे। इस प्रकार उनका चित्त सब ओरसे भगवान्‌में ही लगा रहता था। भगवान्‌में लगा चित्त अपने-आप निर्मल हो जाता है और उसमें अपने-आप ही वैराग्यका उदय होता है।

राजा शङ्खके मनमें वैराग्यके साथ भगवान्‌को पानेकी उत्कण्ठा जाग गयी। अब वे बराबर सोचते रहते—'मुझे भगवान्‌के कब दर्शन होंगे? वे दयामय मुझे कब अपनायेंगे, मैं तो इतना अधम हूँ कि उनके श्रीचरणोंके सम्मुख जानेका अधिकारी कभी हो ही नहीं सकता, किंतु वे मेरे हृदयधन तो कृपाके समुद्र ही हैं। वे मुझ से क्षुद्रपर भी क्या कभी कृपा करेंगे? मैं क्या करूँ, कैसे उन सौन्दर्यसिन्धुकी एक झाँकी पाऊँ?' राजाकी व्याकुलताका कहीं पार नहीं था। उनके प्राण छटपटाने लगे।

सहसा बड़ी ही मधुर ध्वनि राजाने सुनी—'राजन्! तुम शोक छोड़ दो। तुम तो मुझे बहुत ही प्यारे हो। तुमने मेरे लिये बहुत कष्ट सहा है, बहुत तप किया है, मैं तुमपर सन्तुष्ट हूँ; किंतु अभी तुम्हें मेरे दर्शन होनेमें एक सहस्र वर्षकी देर है। तुम्हारी ही भाँति महर्षि अगस्त्य भी मेरे दर्शनके लिये व्याकुल हो रहे हैं। ब्रह्माजीके आदेशसे वे वेंकटेश पर्वतपर तप कर रहे हैं। अब तुम भी वहीं जाकर मुझमें मन लगाकर मेरा भजन करो। वहीं तुम्हें मेरे दर्शन होंगे।'

राजा शङ्ख तो इस वाणीको सुनते ही मारे हर्षके नाचने लगे। उनका हृदय शीतल हो गया। 'भला, मुझ अधमको भगवान्‌के दर्शन होंगे तो!' उन्हें तो एक हजार वर्ष एक क्षणसे भी छोटे लगे। थोड़े समयके साधनसे उकता जानेवाले लोगोंमें भगवान्‌का प्रेम नहीं होता। जिसके हृदयमें प्रेम है, उसे तो यह पता लग जाना कि 'कभी उसे प्रेमास्पद प्रभु मिलेंगे—बहुत बड़ा वरदान है।' जो भगवान् कल्प कल्पकी साधनामें ऋषियोंको भी कदाचित् ही मिलते हैं, वे हजार वर्षमें मिलेंगे—यह तो बहुत ही सुगम बात हो गयी। वे हजार वर्षोंको कुछ गिनते ही नहीं। राजाने उसी समय अपने बड़े पुत्र वज्रका राज्याभिषेक कराया और वे वेङ्कटेशपर्वतकी ओर चल पड़े। भगवान्‌का दर्शन तो हजार वर्षोंमें होगा ही, फिर अब तप तथा भजन क्यों किया जाय—यह बात भक्तके मनमें नहीं आती। उसे तो दर्शन हो जानेपर भी भजनको छोड़ देना स्वीकार नहीं होता। राजाने तो अपनेपर भगवान्‌की कृपाका अनुभव कर लिया था, इससे उनकी भजनमें रुचि अत्यन्त बढ़ गयी थी। शिवजीने कहा है—'उमा राम सुभाव जेहिं जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना।' पर्वतपर पहुँचकर स्वामितीर्थमें स्वामिपुष्करिणीके पास उन्होंने अपनी पर्णकुटी बना ली और चित्तको भगवान्‌में लगाकर कठोर तप करने लगे।

महर्षि अगस्त्य उसी पर्वतकी परिक्रमा कर रहे थे। देवताओं एवं ऋषियोंको पता लग गया कि अगस्त्यजीको दर्शन देनेके लिये भगवान् यहाँ प्रकट होनेवाले हैं। अतः वे लोग भी भगवान्‌के दर्शनकी इच्छासे वहाँ एकत्र हो गये। जब तप एवं पूजन करते हुए लगभग एक हजार वर्ष बीत गये और अगस्त्यजीको श्रीनारायणके दर्शन नहीं हुए, तब उन्हें बड़ी व्याकुलता हुई। वे बहुत ही दुखी हो गये। भगवान्‌की अप्राप्तिका यह दुःख जब बढ़ जाता है, तब भगवान् तुरंत दर्शन देते हैं। उसी समय ब्रह्माजीके भेजे बृहस्पतिजी, शुक्राचार्य आदि महर्षि-गणोंने आकर उनसे कहा—'भगवान् ब्रह्माने हमें कहा है कि हम आपको लेकर स्वामिपुष्करिणीके तटपर शङ्ख राजाके पास जायँ। वहीं भगवान् श्रीहरिके दर्शन होंगे।'

वे महर्षिगण तथा देववृन्द, जिनकी सब लोग आराधना करते हैं, स्वयं अगस्त्यजीको साथ लेकर राजा शङ्खकी कुटियापर पहुँचे। राजाने उन सबकी पूजा की। देवगुरु बृहस्पतिजीने ब्रह्माजीका सन्देश सुनाया। उसे सुनकर राजा भगवान्‌के प्रेममें मग्न होकर भगवान्‌के गुण एवं नामोंका कीर्तन करते हुए नृत्य करने लगे। सभी लोग श्रीगोविन्दके कीर्तनमें सम्मिलित होकर तन्मय हो गये। तीन दिन स्तुति, प्रार्थना तथा कीर्तनकी यह धारा अखण्ड चलती रही। तीसरे दिन रात्रिमें जब सब लोग विश्राम करने लगे, तब रात्रिके पिछले प्रहरमें उन्होंने स्वप्न देखा। स्वप्नमें उन्होंने शङ्ख-चक्र-गदा पद्मधारी चतुर्भुज भगवान्‌के दर्शन किये। प्रातःकाल सबको निश्चय हो गया कि आज भगवान्‌के दर्शन होंगे। पुष्करिणीमें स्नान करके सब मिलकर भगवान्‌की नाना प्रकारसे स्तुति करने लगे। 'ॐ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर मन्त्रका जप करते हुए उनके हृदय अत्यन्त उत्कण्ठित हो गये भगवान्‌के दर्शन करनेके लिये। इसी समय उनके सामने एक अद्भुत तेज प्रकट हुआ। कोटि-कोटि सूर्य भी उतने प्रकाशमान नहीं हो सकते। इतनेपर भी उस तेजमें न तो ताप था और न

नेत्र ही उसमें चौंधियाते थे। वह बड़ा ही स्निग्ध, शीतल प्रकाश था। उस तेजको देखते ही सब भगवान नारायणका ध्यान करने लगे। उन्होंने तत्काल उन श्रीहरिके दर्शन किये। भगवान्‌का वह स्वरूप मन तथा वाणीसे परे है। उनके सहस्रों मस्तक, सहस्रों नेत्र, सहस्रों नासिका, कर्ण तथा मुख हैं। उनके बाहु एवं चरणोंकी भी कोटि गणना नहीं। भगवान्‌का दिव्य शरीर तपाये हुए सोनेके समान है। उनकी आकृति मनोहर होनेपर भी अत्यन्त भयंकर है। उनकी दाढ़ें कराल हैं, उनके मुखसे अग्निकी लपटें निकल रही हैं। उन अनादि, अनन्त अचिन्त्य, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान्‌के इस स्वरूपको देखकर डरते हुए भी सब हर्षके साथ जय-जयकार करते हुए उनकी स्तुति करने लगे।

वहीं भगवान्‌के सभी शङ्ख, चक्र आदि आयुध मूर्तिमान् हो गये। सबने भगवान्‌की पूजा की। भगवान् ब्रह्मा, शङ्कर-जी, सनकादि ऋषि, सभी सिद्ध, योगी भगवत्पार्षद वहाँ भगवान्‌के दर्शन करनेके लिये एकत्र हो गये। सब भगवान्‌के इस भयंकर रूपसे डर रहे थे। सब सौन्दर्यघन श्रीहरिको परम सुन्दर चतुर्भुजरूपमें ही देखना चाहते थे। भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभुने सबकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये अपने उस विराट्‌रूपको अन्तर्हित कर लिया और दूसरे ही क्षण वे एक सुन्दर रत्नखचित विमानपर चतुर्भुज पीताम्बरधारी, परम सुन्दर स्वरूपमें प्रकट हो गये। सबने भगवान्‌की फिर बड़ी भक्तिसे स्तुति की, उनका पूजन किया। भगवान्‌के इस मधुरिमामय स्वरूपका दर्शन करके सबके हृदय आनन्दमग्न हो रहे थे। भगवान्‌ने अगस्त्यजीसे कहा—'तुमने मेरे लिये बड़ा तप किया है। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे वरदान माँग लो।'

महर्षि अगस्त्यने भगवान्‌से उनके चरणोंमें भक्तिका वरदान माँगा और देवताओंकी प्रेरणासे यह प्रार्थना की कि भगवान् वेंकटेश्वरपर्वतपर निवास करें और वहाँ जो दर्शन करने आयें, उनकी कामना पूर्ण हो। महर्षिपर कृपा करके उस पर्वतपर भगवान् श्रीविग्रहरूपमें अब भी विद्यमान हैं। वेंकटेश्वरपर्वत उसी समयसे तीर्थ हो गया। भगवान्‌ने राजा शङ्खसे भी वरदान माँगनेको कहा। किन्तु भी सच्चे भक्तको भगवान्‌की भक्तिको छोड़कर और कुछ कभी अभीष्ट नहीं होता। राजाने भी वरदानमें भक्ति ही माँगी।

महर्षि अगस्त्य भगवान्‌की भक्तिके प्रतापसे सप्तर्षियोंमें स्थान पाकर कल्पान्ततक अमर हो गये। उनके तेजसे रावण जैसे त्रिभुवनविजयी भी डरते थे। महर्षिने अपना आश्रम विन्ध्याचलसे दक्षिण बनाया था। वहाँ दण्डकारण्यमें राक्षसों-का उत्पात होनेपर महर्षिके आश्रममें वे उपद्रव करनेका साहस नहीं करते थे। जब विन्ध्याचलने बढ़कर सूर्यका मार्ग रोकना चाहा, तब महर्षिने ही उसे भूमिमें प्रणत पड़े रहनेका आदेश दिया और तबसे वह वैसे ही पड़ा है।

भगवान्‌के परम भक्त श्रीअगस्त्यजीको बारम्बार नमस्कार!

बार-बार नमस्कार है। क्षीरसिन्धुमें निवास करनेवाले भगवान्‌को नमस्कार है। अविनाशी लक्ष्मीपतिको नमस्कार है। जिनके अनन्त तेजकी सूर्य आदिमें भी तुलना नहीं हो सकती, उन भगवान्‌को नमस्कार है तथा जो पुण्यकर्मपरायण पुरुषोंको स्वतः प्राप्त होते हैं, उन कृपालु श्रीहरिको बार-बार नमस्कार है। सूर्य और चन्द्रमा जिनके नेत्र हैं, जो सम्पूर्ण यज्ञोंका फल देनेवाले हैं, यज्ञाङ्गोंमें जिनकी शोभा होती है तथा जो साधुपुरुषोंके परम प्रिय हैं, उन भगवान् श्रीनिवासको बार-बार नमस्कार है। जो कारणके भी कारण, शब्दादि विषयोंसे रहित, अभीष्ट सुख देनेवाले तथा भक्तोंके हृदयमें रमण करनेवाले हैं, उन भक्तवत्सल भगवान्‌को बार-बार नमस्कार है। अद्भुत कारणरूप आपको नमस्कार है, नमस्कार है। मन्दराचल पर्वत धारण करनेवाले कच्छपरूपधारी आपको नमस्कार है। यज्ञवाराहरूपमें प्रकट होनेवाले आपको नमस्कार है। हिरण्याक्षको विदीर्ण करनेवाले आपको नमस्कार है। वामनरूपधारी आपको नमस्कार है। क्षत्रियकुलका अन्त करनेवाले परशुरामरूपमें आपको नमस्कार है। रावणका मर्दन करनेवाले श्रीरामरूपधारी आपको नमस्कार है तथा नन्दनन्दन श्रीकृष्णके बड़े भाई बलरामरूपमें आपको नमस्कार है। कमलाकान्त! आपको नमस्कार है। मनको सुख देनेवाले आपको नमस्कार है। भगवन्! आप शरणागतोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले हैं। आपको बारबार नमस्कार है।'

ब्राह्मण भद्रमतिके इस प्रकार स्तुति करनेपर भक्तवत्सल भगवान् श्रीनिवास बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने भद्रमतिको अपने दिव्य स्वरूपका साक्षात् दर्शन कराया और स्नेहपूर्वक कहा—'वत्स! तुम्हारा कल्याण हो मैं तुम्हारे इस महास्तोत्रसे बहुत सन्तुष्ट हूँ। तुम इस लोकमें पुत्र पौत्र, धन-वैभव आदिमें सुखी रहोगे और अन्तमें तुम्हें मेरे परमधामकी प्राप्ति होगी।'

यों कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये। भद्रमतिने अपना शेष जीवन भगवान्‌के भजन-कीर्तनमें ही व्यतीत किया और अन्तमें उन्हें प्रभुके वैकुण्ठधामकी प्राप्ति हुई।

श्रीरामानुजाचार्य

श्रीरामानुजाचार्य बडे ही विद्वान्, सदाचारी, धैर्यवान्, सरल एवं उदार थे। ये आचार्य आळवन्दार (यामुनाचार्य) की परम्परामे थे। इनके पिताका नाम केशवभट्ट था। ये दक्षिणके तिरुकुदूर नामक क्षेत्रमे रहते थे। जब इनकी अवस्था बहुत छोटी थी, तभी इनके पिताका देहान्त हो गया और इन्होने काञ्चीमे जाकर यादवप्रकाश नामक गुरुसे वेदाध्ययन किया। इनकी बुद्धि इतनी कुशाग्र थी कि ये अपने गुरुकी व्याख्यामे भी दोष निकाल दिया करते थे। इसीलिये गुरुजी इनसे बडी ईर्ष्या करने लगे, यहाँतक कि वे इनके प्राण लेनेतकको उतारू हो गये। उन्होने रामानुजके सहाध्यायी एव चचेरे भाई गोविन्दभट्टसे मिलकर यह षड्यन्त्र रचा कि गोविन्दभट्ट रामानुजको काशीयात्राके बहाने किसी घने जगलमे ले जाकर वहीं उनका काम तमाम कर दे। गोविन्दभट्टने ऐसा ही किया, परतु भगवान्की कृपासे एक व्याध और उसकी स्त्रीने इनके प्राणोकी रक्षा की।

विद्या, चरित्रबल और भक्तिमे रामानुज अद्वितीय थे। इन्हे कुछ योगसिद्धियाँ भी प्राप्त थीं, जिनके बलसे इन्होंने काञ्चीनगरीकी राजकुमारीको प्रेतबाधासे मुक्त कर दिया। जब महात्मा आळवन्दार मृत्युकी घडियाँ गिन रहे थे, उन्होने अपने शिष्यके द्वारा रामानुजाचार्यको अपने पास बुलवा भेजा। परंतु रामानुजके श्रीरङ्गम् पहुँचनेके पहले ही आळवन्दार (यामुनाचार्य) भगवान् नारायणके धाममे पहुँच चुके थे। रामानुजने देखा कि श्रीयामुनाचार्यके हाथकी तीन उँगलियाँ मुडी हुई है। इसका कारण कोई नहीं समझ सका। रामानुज तुरत ताड गये कि यह सकेत मेरे लिये है। उन्होने यह जान लिया कि श्रीयामुनाचार्य मेरेद्वारा ब्रह्मसूत्र, विष्णुसहस्रनाम और आळवन्दारोंके 'दिव्यप्रबन्धम्' की टीका करवाना चाहते हैं। उन्होने आळवन्दारके मृत शरीरको प्रणाम किया और कहा—'भगवन्! मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, मै इन तीनो ग्रन्थोकी टीका अवश्य लिखूँगा अथवा लिखवाऊँगा।' रामानुजके यह कहते ही आळवन्दारकी तीनो उँगलियाँ सीधी हो गयीं। इसके बाद श्रीरामानुजने

आळवन्दारके प्रधान शिष्य पेरियनाम्बिसे विधिपूर्वक वैष्णव दीक्षा ली और वे भक्तिमार्गमें प्रवृत्त हो गये।

रामानुज गृहस्थ थे, परंतु जब उन्होंने देखा कि गृहस्थीमें रहकर अपने उद्देश्यको पूरा करना कठिन है, तब उन्होंने गृहस्थका परित्याग कर दिया और श्रीरङ्गम् जाकर यतिराज नाम सन्यासीसे सन्यासकी दीक्षा ले ली। इधर इनके गुरु यादवप्रकाशको अपनी करनीपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ और वे भी सन्यास लेकर श्रीरामानुजकी सेवा करनेके लिये श्रीरङ्गम् चले आये। उन्होंने अपना सन्यास-आश्रमका नाम गोविन्दयोगी रक्खा।

आचार्य रामानुज दयामें भगवान् बुद्धके समान, प्रेम और सहिष्णुतामें ईसामसीहके प्रतियोगी, शरणागतिमें आळवारोंके अनुयायी और प्रचारकार्यमें सेन्ट जॉनके समान उत्साही थे। इन्होंने तिरुकोट्टियूरके महात्मा नाम्बिसे अष्टाक्षर मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) की दीक्षा ली थी। नाम्बिने मन्त्र देते समय इनसे कहा था कि 'तुम इस मन्त्रको गुप्त रखना।' परतु रामानुजने सभी वर्णके लोगोंको एकत्रकर मन्दिरके शिखरपर खड़े होकर सब लोगोंको वह मन्त्र सुना दिया। गुरुने जब रामानुजकी इस धृष्टताका हाल सुना, तब वे इनपर बड़े रुष्ट हुए और कहने लगे—'तुम्हें इस अपराधके बदले नरक भोगना पड़ेगा।' श्रीरामानुजने इसपर बड़े विनयपूर्वक कहा कि 'भगवन् ! यदि इस महामन्त्रका उच्चारण करके हजारों आदमी नरककी यन्त्रणासे बच सकते है तो मुझे नरक भोगनेमें आनन्द ही मिलेगा।' रामानुजके इस उत्तरसे गुरुका क्रोध जाता रहा, उन्होंने बडे प्रेमसे इन्हें गले लगाया और आशीर्वाद दिया। इस प्रकार रामानुजने अपनी समदर्शिता और उदारताका परिचय दिया।

रामानुजने आळवन्दारकी आज्ञाके अनुसार आळवारोंके 'दिव्यप्रबन्धम्' का कई बार अनुशीलन किया और उसे कण्ठ कर डाला। उनके कई शिष्य हो गये और उन्होंने इन्हें आळवन्दारकी गद्दीपर बिठाया, परतु इनके कई शत्रु भी हो गये, जिन्होंने कई बार इन्हें मरवा डालनेकी चेष्टा की। एक दिन इनके किसी शत्रुने इन्हें भिक्षामें विष मिला हुआ भोजन दे दिया, परन्तु एक स्त्रीने इन्हें सावधान कर दिया और इस प्रकार रामानुजके प्राण बच गये। रामानुजने आळवारोंके भक्तिमार्गका प्रचार करनेके लिये सारे भारतकी यात्रा की और गीता तथा ब्रह्मसूत्रपर भाष्य लिखे। वेदान्तसूत्रोंपर इनका भाष्य 'श्रीभाष्य' के नामसे प्रसिद्ध है और इनका सम्प्रदाय भी 'श्रीसम्प्रदाय' कहलाता है, क्योंकि इस सम्प्रदायकी आद्यप्रवर्तिका श्रीश्रीमहालक्ष्मीजी मानी जाती है। यह ग्रन्थ पहले पहल काश्मीरके विद्वानोंको सुनाया गया था। इनके प्रधान शिष्यका नाम कूरत्ताळवार (कूरेश) था। कूरत्ताळवारके पराशर और पिल्लन् नामके दो पुत्र थे। रामानुजने पराशरके द्वारा विष्णुसहस्रनामकी टीका लिखवायी और पिल्लन्से 'दिव्यप्रबन्धम्' की टीका लिखवायी। इस प्रकार उन्होंने आळवन्दारकी तीनों इच्छाओंको पूर्ण किया।

उन दिनों श्रीरङ्गम्पर चोळदेशके राजा कुलोत्तुङ्गका अधिकार था। ये बड़े कट्टर शैव थे। इन्होंने श्रीरङ्गजीके मन्दिरपर एक ध्वजा टँगवा दी थी, जिसपर लिखा था—'शिवात्पर नास्ति' (शिवसे बढकर कोई नहीं है)। जो कोई इसका विरोध करता, उसके प्राणोंपर आ बनती थी। कुलोत्तुङ्गने रामानुजके शिष्य कूरत्ताळवारको बहुत पीड़ा दी।

इस समय आचार्य रामानुज मैसूरराज्यके शालग्राम नामक स्थानमें रहने लगे थे। वहाँके राजा भिट्टिदेव वैष्णवधर्मके सबसे बड़े पक्षपाती थे। आचार्य रामानुजने वहाँ बारह वर्षतक रहकर वैष्णवधर्मकी बड़ी सेवा की। सन् १०९९ में उन्हें नम्मले नामक स्थानमें एक प्राचीन मन्दिर मिला और राजाने उसका जीर्णोद्धार करवाकर पुनः नये ढंगसे निर्माण करवाया। वह मन्दिर आज भी तिरुनारायणपुरके नामसे प्रसिद्ध है। वहाँपर भगवान् श्रीरामका जो प्राचीन विग्रह है, वह पहले दिल्लीके बादशाहके अधिकारमें था। बादशाहकी लड़की उसे प्राणोंसे भी बढकर मानती थी। रामानुज अपनी योगशक्तिके द्वारा बादशाहकी स्वीकृति प्राप्तकर उस विग्रहको वहाँसे ले आये और उसकी पुनः तिरुनारायणपुरमें स्थापना की।

राजा कुलोत्तुङ्गका देहान्त हो जानेपर आचार्य रामानुज श्रीरङ्गम् चले आये। वहाँ उन्होंने एक मन्दिर बनवाया, जिसमें नम्माळवार और दूसरे आळवार सतोंकी प्रतिमाएँ स्थापित की गयीं और उनके नामसे कई उत्सव भी जारी किये। उन्होंने तिरुपतिके मन्दिरमें भगवान् गोविन्दराज-पेरुमलकी पुनः स्थापना करवायी और मन्दिरका पुनः निर्माण करवाया। उन्होंने देशभरमें भ्रमण करके हजारों नर नारियोंको भक्तिमार्गमें लगाया। आचार्य रामानुजके चौहत्तर शिष्य थे, जो सब-के-सब सत हुए। इन्होंने कूरत्ताळवारके पुत्र महात्मा पिल्ललोकाचार्यको अपना

उत्तराधिकारी बनाकर एक सौ बीस वर्षकी अवस्थामें इस असार संसारको त्याग दिया।

रामानुजके सिद्धान्तके अनुसार भगवान् ही पुरुषोत्तम हैं। वे ही प्रत्येक शरीरमें साक्षीरूपमें विद्यमान हैं। वे जगत्के नियन्ता, शेषी (अवयवी) एवं स्वामी हैं और जीव उनका नियम्य, शेष तथा सेवक है। अपने व्यष्टि अहङ्कारको सर्वथा मिटाकर भगवान्‌की सर्वतोभावेन शरण ग्रहण करना ही जीवका परम पुरुषार्थ है। भगवान् नारायण ही सत् हैं, उनकी शक्ति महालक्ष्मी चित् हैं और यह जगत् उनके आनन्दका विलास है, रज्जुमें सर्पकी भाँति असत् नहीं है। भगवान् लक्ष्मीनारायण जगत्के माता-पिता और जीव उनकी सन्तान हैं। माता पिताका प्रेम और उनकी कृपा प्राप्त करना ही सन्तानका धर्म है। वाणीसे भगवान् नारायणके नामका ही उच्चारण करना चाहिये और मन, वाणी, शरीरसे उनकी सेवा करनी चाहिये।

श्रीरामानुजाचार्यने 'प्रपत्ति' पर बहुत जोर दिया है। न्यासविद्या ही वह प्रपत्ति है। आनुकूल्यका सङ्कल्प और प्रातिकूल्यका वर्जन प्रपत्ति है। भगवान्‌में आत्मसमर्पण करना प्रपत्ति है। सब प्रकारसे भगवान्‌के शरण हो जाना प्रपत्तिका लक्षण है। नारायण विभु हैं, भूमा हैं, उनके चरणोंमें आत्मसमर्पण करनेसे जीवको शान्ति मिलती है। उनके प्रसन्न होनेपर मुक्ति मिल सकती है। उन्हें सर्वस्व निवेदन करना होगा। सब विषयोंको त्यागकर उनकी शरण लेनी होगी।

सत्यकाम सत्यसङ्कल्प परब्रह्मभूत पुरुषोत्तम महाविभूते श्रीमन्नारायण वैकुण्ठनाथ अपारकारुण्यसौशील्यवात्सल्यौदार्यैश्वर्यसौन्दर्यमहोदधे, अनालोचितविशेषाशेषलोकशरण्य प्रणतार्तिहर आश्रितवात्सल्यजलधे, अनवरतविदितनिखिलभूतजातयाथात्म्य अशेषचराचरभूतनिखिलनियमाशेषचिदचिद्वस्तुशेषिभूत निखिलजगदाधाराखिलजगत्स्वामिन्, अस्मत्स्वामिन्, सत्यकाम सत्यसंकल्प सकलेतरविलक्षण अर्थिकल्पक आपत्सख, श्रीमन्नारायण अशरणशरण्य, अनन्यशरणं त्वत्पदारविन्दयुगलं शरणमहं प्रपद्ये।

'हे पूर्णकाम, सत्यसङ्कल्प, परब्रह्मस्वरूप पुरुषोत्तम! हे महान् ऐश्वर्यसे युक्त श्रीमन्नारायण! हे वैकुण्ठनाथ! आप अपार करुणा, सुशीलता, वत्सलता, उदारता, ऐश्वर्य और सौन्दर्य आदि गुणोंके महासागर हैं, छोटे-बड़ेका विचार न करके सामान्यतः सभी लोगोंको आप शरण देते हैं, प्रणतजनोंकी पीडा हर लेते हैं। शरणागतोंके लिये तो आप वत्सलताके समुद्र ही हैं। आप सदा ही समस्त भूतोंकी यथार्थताका ज्ञान रखते हैं। सम्पूर्ण चराचर भूतों, सारे नियमों और समस्त जड-चेतन वस्तुओंके आप अवयवी हैं (ये सभी आपके अवयव हैं)। आप समस्त संसारके आधार हैं, अखिल जगत् तथा हम सभी लोगोंके स्वामी हैं। आपकी कामनाएँ पूर्ण और आपका सङ्कल्प सच्चा है। आप समस्त प्रपञ्चसे इतर और विलक्षण हैं। याचकोंके लिये तो आप कल्पवृक्ष हैं, विपत्तिमें पड़े हुए लोगोंके सहायक हैं। ऐसी महिमावाले तथा आश्रयहीनोंको आश्रय देनेवाले हे श्रीमन्नारायण! मैं आपके चरणारविन्दयुगलकी शरणमें आता हूँ; क्योंकि उनके सिवा मेरे लिये कहीं भी शरण नहीं है।'

पितरं मातरं दारान् पुत्रान् बन्धून् सखीन् गुरून्।
रत्नानि धनधान्यानि क्षेत्राणि च गृहाणि च॥
सर्वधर्मांश्च सन्त्यज्य सर्वकामांश्च साक्षरान्।
लोकविक्रान्तचरणौ शरणं तेऽव्रजं विभो॥

'हे प्रभो! मैं पिता, माता, स्त्री, पुत्र, बन्धु, मित्र, गुरु, सब रत्न, धन-धान्य, खेत, घर, सारे धर्म और अक्षरसहित सम्पूर्ण कामनाओंका त्यागकर समस्त ब्रह्माण्डको आक्रान्त करनेवाले आपके दोनों चरणोंकी शरणमें आया हूँ।'

मनोवाक्कायैरनादिकालप्रवृत्तानन्ताकृत्यकरणकृत्याकरणभगवदपचारभागवतापचारासह्यापचाररूपनानाविधानन्तापचारानारब्धकार्याननारब्धकार्यान् कृतान् क्रियमाणान् करिष्यमाणांश्च सर्वान् अशेषतः क्षमस्व।

अनादिकालप्रवृत्तविपरीतज्ञानमात्मविषयं कृत्स्नजगद्विषयं च विपरीतवृत्तं चाशेषविषयमद्यापि वर्तमानं वर्तिष्यमाणं च सर्वं क्षमस्व।

मदीयानादिकर्मप्रवाहप्रवृत्तां भगवत्स्वरूपतिरोधानकरीं विपरीतज्ञानजननीं स्वविषयायाश्च भोग्यबुद्धेर्जननीं देहेन्द्रियत्वेन भोग्यत्वेन सूक्ष्मरूपेण चावस्थितां दैवीं गुणमयीं मायां दासभूतः शरणागतोऽस्मि तवास्मि दास इति वक्तारं मां तारय।

'हे भगवन्! मन, वाणी और शरीरके द्वारा अनादि कालसे अनेकों न करने योग्य कर्मोंका करना, करने योग्य कर्मोंको न करना, भगवान्‌का अपराध, भगवद्भक्तोंका अपराध तथा और भी जो अक्षम्य अनाचाररूप नाना प्रकार-

के अनन्त अपराध मुझसे हुए हैं, उनमें जो प्रारब्ध बन चुके हैं अथवा जो प्रारब्ध नहीं बने हैं, उन सभी पापोंको तथा जिन्हें मैं कर चुका हूँ, जिन्हें कर रहा हूँ और जिन्हें अभी करनेवाला हूँ, उन सबको आप क्षमा कर दीजिये।'

'आत्मा और सारे संसारके विषयमें जो मुझे अनादिकालसे विपरीत ज्ञान होता चला आ रहा है तथा सभी विषयोंमें जो मेरा विपरीत आचरण आज भी है और आगे भी रहनेवाला है, वह सब-का-सब आप क्षमा कर दें।'

'मेरे अनादि कर्मके प्रवाहमें जो चली आ रही है, जो मुझसे भगवान्‌के स्वरूपको छिपा लेती है, जो विपरीत ज्ञानकी जननी, अपने विषयमें भोग्यबुद्धिको उत्पन्न करनेवाली और देह, इन्द्रिय, भोग्य तथा सूक्ष्मरूपसे स्थित रहनेवाली है, उस दैवी त्रिगुणमयी मायासे 'मैं आपका दास हूँ, किङ्कर हूँ, आपकी शरणमें आया हूँ' इस प्रकार रट लगानेवाले मुझ दीनका आप उद्धार कर दीजिये।'

यह श्रीरामानुजाचार्यकी 'प्रपत्ति स्वरूप भगवत्प्रार्थना है।

श्रीनिम्बार्काचार्यजी

वैष्णवोंके प्रमुख चार सम्प्रदायोंमेंसे एक सम्प्रदाय है द्वैताद्वैत या निम्बार्क-सम्प्रदाय। निश्चितरूपसे यह मत बहुत प्राचीन कालसे चला आ रहा है। श्रीनिम्बार्काचार्यजीने परम्पराप्राप्त इस मतको अपनी प्रतिभासे उज्ज्वल करके लोक-प्रचलित किया इसीसे इस द्वैताद्वैत मतकी निम्बार्क-सम्प्रदायके नामसे प्रसिद्धि हुई।

ब्रह्म सर्वशक्तिमान् हैं और उनका सगुणभाव ही मुख्य है। इस जगत्के रूपमें परिणत होनेपर भी वे निर्विकार हैं। जगत्से अतीतरूपमें वे निर्गुण हैं। जगत्की सृष्टि, स्थिति एवं लय उनसे ही होते हैं। वे जगत्के निमित्त एवं उपादान कारण हैं। जगत् उनका परिणाम है और वे अविकृत परिणामी हैं। जीव अणु है और ब्रह्मका अंश है। ब्रह्म जीव तथा जडसे अत्यन्त पृथक् और अपृथक् भी हैं। जीव भी ब्रह्मका परिणाम तथा नित्य है।

इस सृष्टिचक्रका प्रयोजन ही यह है कि जीव भगवान्की प्रसन्नता एवं उनका दर्शन प्राप्त करे। जीवके समस्त क्लेशोंकी निवृत्ति एवं परमानन्दकी प्राप्ति भगवान्की प्राप्तिसे ही होगी। ब्रह्मके साथ अपने तथा जगत्के अभिन्नत्वका अनुभव ही जीवकी मुक्तावस्था है। यह भगवत्प्राप्तिसे ही सम्पन्न होती है। उपासनाद्वारा ही ब्रह्मकी प्राप्ति होती है। ब्रह्मका सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपोंमें विचार किया जा सकता है, किंतु जीवकी मुक्तिका साधन भक्ति ही है। भक्तिसे ही भगवान्की प्राप्ति होती है। सत्कर्म एवं सदाचारके द्वारा शुद्धचित्तमें जब भगवत्कथा एवं भगवान्के गुणगण-श्रवणसे भगवान्की

प्रसन्नता प्राप्त करनेकी इच्छा जाग्रत् होती है, तब मुमुक्षु पुरुष सद्गुरुकी शरण ग्रहण करता है। गुरुद्वारा उपदिष्ट उपासनाद्वारा शुद्धचित्तमें भक्तिका प्राकट्य होता है। यही भक्ति जीवको भगवत्प्राप्ति कराकर मुक्त करती है।

थोड़ेमें द्वैताद्वैतमतका सार यही है। भगवान् नारायणने हंसस्वरूपसे ब्रह्माजीके पुत्र सनक, सनन्दन, सनातन एवं सनत्कुमारको इसका उपदेश किया। सनकादि कुमारोंसे इसे देवर्षि नारदजीने पाया और देवर्षिने इसका उपदेश श्रीनिम्बार्काचार्यजीको किया। यह इस सम्प्रदायकी परम्परा है। श्रीनिम्बार्काचार्यजीने अपने ब्रह्मसूत्रोंके भाष्यमें 'अस्मद् गुरवे नारदाय' कहा है। सनकादि कुमारोंका भी उन्होंने स्मरण किया है उसी ग्रन्थमें गुरुपरम्परामें। देवर्षि नारदजीने श्रीनिम्बार्काचार्यजीको 'गोपालमन्त्र'की दीक्षा दी, ऐसी मान्यता है।

भक्तोंके मतसे द्वापरमें और सम्प्रदायके कुछ विद्वानोंके मतसे विक्रमकी पाँचवीं शताब्दीमें श्रीनिम्बार्काचार्यजीका प्रादुर्भाव हुआ। दक्षिण भारतमें वैदूर्यपत्तन परम पवित्र तीर्थ है। इसे दक्षिणकाशी भी कहते हैं। यही स्थान श्रीएकनाथजीकी जन्मभूमि है। यहीं श्रीअरुणमुनिजीका अरुणाश्रम था। श्रीअरुणमुनिजीकी पत्नी जयन्तीदेवीकी गोदमें जिस दिव्य कुमारका आविर्भाव हुआ, उसका नाम पहले नियमानन्द हुआ और यही आगे श्रीनिम्बार्काचार्यजीके नामसे प्रख्यात हुए।

श्रीनिम्बार्काचार्यजीके जीवनवृत्तके विषयमें इससे अधिक ज्ञात नहीं है। ये कब गृह त्यागकर व्रजमें आये, इसका कुछ पता नहीं है। व्रजमें श्रीगिरिराज गोवर्धनके समीप ध्रुवक्षेत्रमें उनकी साधन-भूमि है। एक दिन समीपके स्थानसे एक दण्डी महात्मा आचार्यके समीप पधारे। दो शास्त्रज्ञ महापुरुष परस्पर मिले तो शास्त्रचर्चा चलनी स्वाभाविक थी। समयका दोमेंसे किसीको ध्यान नहीं रहा। सायङ्कालके पश्चात् आचार्यने अतिथि यतिसे प्रसाद ग्रहण करनेके लिये निवेदन किया। सूर्यास्त होनेके पश्चात् नियमतः यतिजी भिक्षा ग्रहण नहीं कर सकते थे। उन्होंने असमर्थता प्रकट की। परन्तु आचार्यजी नहीं चाहते थे कि उनके यहाँ आकर एक विद्वान् अतिथि उपोषित रहें। आश्रमके समीप एक नीमका वृक्ष था, सहसा उस वृक्षपरसे चारों ओर प्रकाश फैल गया। ऐसा लगा, जैसे नीमके वृक्षपर सूर्यनारायण प्रकट हो गये हैं। कोई नहीं कह सकता कि आचार्यके योगबलसे भगवान् सूर्य वहाँ प्रकट हो गये थे या श्रीकृष्णचन्द्रका कोटिसूर्यसमप्रभ सुदर्शन चक्र, जिसके आचार्य मूर्त अवतार थे, प्रकट हो गया था। अतिथिके प्रसाद ग्रहण कर लेनेपर सूर्यमण्डल अदृश्य हो गया। इस घटनासे आचार्य निम्बादित्य या निम्बार्क नामसे विख्यात हुए। आचार्यका वह आश्रम 'निम्बग्राम' कहा जाता है। यह गोवर्धनके समीपका निम्बग्राम है, माटके समीपका नीमगाँव नहीं। वे यतिजी उस समय जहाँ आश्रम बनाकर रहते थे, वहाँ आज यतिपुरा नामक ग्राम है।

श्रीनिम्बार्काचार्यजीका वेदान्तसूत्रोंपर भाष्य 'वेदान्त-सौरभ' और 'वेदान्तकामधेनुदशश्लोक' ये दो ग्रन्थ ही उपलब्ध हैं। ये दोनों ग्रन्थ ही अत्यन्त संक्षिप्त हैं। इनके अतिरिक्त गीताभाष्य, कृष्णस्तवराज, गुरुपरम्परा, वेदान्त-तत्त्वबोध, वेदान्तसिद्धान्तप्रदीप, स्वधर्माध्वबोध, ऐतिह्य-तत्त्वसिद्धान्त, राधाष्टक आदि कई ग्रन्थ आचार्यने लिखे थे।

श्रीनिम्बार्काचार्यजीके शिष्य हुए श्रीनिवासाचार्यजी। इन्होंने आचार्यके ब्रह्मसूत्रभाष्यपर 'वेदान्तकौस्तुभ' नामक ग्रन्थ लिखकर उसकी व्याख्या की। इस 'वेदान्तकौस्तुभ'की टीका आगे चलकर काश्मीरी केशव भट्टाचार्यजीने की। श्रीनिवासाचार्यजीके पश्चात् शिष्यपरम्परासे ग्यारहवें आचार्य हुए श्रीदेवाचार्यजी। इन्होंने 'वेदान्तजाह्नवी' तथा 'भक्ति-रत्नावली' नामक दो ग्रन्थ लिखे, जिनका सम्प्रदायमें अत्यन्त सम्मान है।

श्रीदेवाचार्यजीके दो शिष्य हुए—श्रीसुन्दर भट्टाचार्यजी तथा श्रीव्रजभूषण देवाचार्यजी। इन दोनों आचार्योंकी परम्परा आगे चलकर विस्तीर्ण हुई। श्रीसुन्दर भट्टाचार्यजीकी शिष्यपरम्परामें सत्रह भट्टाचार्य आचार्य और हुए। इनमें सोलहवें काश्मीरी श्रीकेशव भट्टाचार्यजी हुए। काश्मीरी केशव भट्टाचार्यजीके शिष्य श्रीभट्टजीने 'युगलशतक'की रचना की। यही ग्रन्थ 'आदि वाणी' कहा जाता है। श्रीभट्टजीके भ्रातृवंशज गोस्वामी अब भी निम्बार्क-सम्प्रदायकी सीधी परम्परामें ही हैं। श्रीभट्टजीके प्रधान शिष्य श्रीहरिव्यासजी हुए। इनके अनुयायी आगे चलकर अपनेको 'हरिव्यासी' कहने लगे। श्रीहरिव्यासजीके बारह शिष्य हुए, जिनमें श्रीशोभूराम-देवाचार्य, श्रीपरशुरामदेवाचार्य, श्रीघमण्डदेवाचार्य तथा श्रीलपरागोपालदेवाचार्य अपनी प्रमुख विशेषताओंके कारण

उल्लेखनीय हैं। इनमेंसे श्रीगोपीरामदेवाचार्यजीकी शिष्य-परम्परामें चतुर-चिन्तामणिकी परम्परा इस समय देशमें अधिक व्यापक है। श्रीपरशुरामदेवाचार्य श्रीमहाराजकी परम्पराको ही सर्वेश्वरकी अर्चा प्राप्त है और निम्बार्क-सम्प्रदायके पीठाधिपति इसी परम्पराके आचार्य होते हैं। व्रजमें जो रासलीलाका वर्तमान प्रचार है, वह श्रीघमण्ड-देवाचार्यजीकी भावुकतासे प्रादुर्भूत परम्परा है। श्री-कनरागोपालदेवाचार्यजीके शिष्य श्रीगिरिधारीशरणदेवाचार्यजी जयपुर ग्वालियर आदि अनेकों राजकुलोंके गुरु हुए हैं। श्रीहरिव्यासदेवजीकी यह शिष्य परम्परा है। उनके भ्रातृवर्गज अपनेको 'हरिव्यासी' नहीं मानते। वे निम्बार्क-सम्प्रदायकी सीधी परम्परामें हैं।

श्रीदेवाचार्यजीके दूसरे शिष्य श्रीव्रजभूषणदेवाचार्यजीकी परम्परामें श्रीरसिकदेवजी तथा श्रीहरिदासजी हुए हैं। ऐसी भी मान्यता है कि महाकवि जयदेव इसी परम्परामें हैं। श्रीरसिकदेवजीके आराध्य श्रीरसिकविहारीजी तथा श्रीहरिदास-जीके आराध्य श्रीबाँकेबिहारीजी हैं। श्रीहरिदासजीके अनुयायियोंकी एक परम्पराके लोग अपनेको 'हरिदासी' कहते हैं। इनका मुख्य स्थान वृन्दावनमें टट्टीस्थान है। कृष्ण-प्रणामी या प्रणामी-सम्प्रदायके आद्याचार्य श्रीप्राणनाथजीकी जीवनीमें उनको हरिदासजीका शिष्य कहा गया है। इस प्रकार 'कृष्ण-प्रणामी' परम्परा भी निम्बार्क-सम्प्रदायकी हरिदासजीकी परम्पराकी ही शाखा है। इस प्रणामी-सम्प्रदायका मुख्यपीठ पन्ना (बुन्देलखण्ड) में है।

श्रीनिम्बार्काचार्यजी तथा उनकी परम्पराके अधिकांश आचार्योंकी यह प्रधान विशेषता रही है कि उन्होंने दूसरे आचार्योंके मतका खण्डन नहीं किया है। श्रीदेवाचार्यजीने ही अपने ग्रन्थोंमें अद्वैतमतका खण्डन किया है। श्री-निम्बार्काचार्यजीने प्रस्थानत्रयीके स्थानपर प्रस्थानचतुष्टयको प्रमाण माना और उनमें भी चतुर्थ प्रस्थान श्रीमद्भागवतको परम प्रमाण स्वीकार किया। अनेक वीतराग, भावुक भगवद्भक्त इस परम्परामें सदा ही रहे हैं।

भक्त श्रीहरिव्यासदेवजी

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायमे परम वैष्णव आचार्य श्रीहरिव्यासदेवजी बहुत ऊँचे सत हो गये हैं। आपका जन्म गौड़ ब्राह्मणकुलमे हुआ था। आपने श्रीभट्टजीसे दीक्षा ली थी। पहली बार जब आप दीक्षाके लिये श्रीगुरुचरणोमे गये, उस समय श्रीभट्टजी गोवर्धनमे वास कर रहे थे और युगलसरकार श्रीप्रिया-प्रीतमको गोदमे बिठाकर लाड़ लड़ा रहे थे। श्रीभट्टजीने पूछा—'हरिव्यास! हमारे अगमे कौन विराजते हैं?' हरिव्यासजी बोले, 'महाराज! कोई नहीं।' इसपर श्रीभट्टजीने कहा—'अभी तुम शिष्य होनेयोग्य नहीं हो, अभी बारह वर्षतक श्रीगोवर्धनकी परिक्रमा करो।' गुरु-आज्ञा प्राप्तकर आपने बारह वर्षतक परिक्रमा की। तत्पश्चात् फिर गुरुसमीप आये। गुरुदेवने फिर वही प्रश्न किया और इसपर उन्होंने वही पुराना उत्तर दिया। पुनः बारह वर्ष श्रीगोवर्धनकी परिक्रमा करनेकी आज्ञा हुई। आज्ञा शिरोधार्य-कर श्रीहरिव्यासदेवने पुन बारह वर्षतक परिक्रमा की। तदुपरान्त गुरु-आश्रममे आये और आचार्यकी गोदमे प्रिया-प्रियतमको देखकर कृतकृत्य हो चरणोंमे लेट गये। अब इन्हे योग्य जान आचार्यने दीक्षा दी।

'भक्तमाल' मे आपके सम्बन्धमे एक बड़े प्रभावशाली वृत्तान्तका वर्णन है। ये अपने सैकडो विद्वान् शिष्योको साथ लेकर भगवद्भक्तिरूप अलौकिक रसकी वर्षा करते हुए पंजाब प्रान्तके गटयावल नामक ग्राममे पहुँचे। गॉवके बाहर एक उपवनमे एक देवीका मठ था। वहॉके राजाकी ओरसे सैकडो बकरे बलिदानके लिये वहॉ बॅधे थे। निरीह पशुओंकी यह दयनीय दशा देख स्वामीजीकी ऑखोमे ऑसू आ गये। सब शिष्योसहित वे वहॉसे चलते बने। रातको राजा स्वप्नमे देखता है कि देवी बडा ही भीषण रूप धारणकर उसके सामने खडी है और डॉटकर कह रही है, 'दुष्ट! तूने मेरे नामपर जो क्रूर कर्म जारी कर रक्खा है, उससे आज एक भगवद्भक्तका चित्त दुखी हुआ है। भगवद्भक्तके इस क्षोभसे मेरा शरीर जला-सा जा रहा है। अत. जाकर उन सब बकरोको खोल दे और फिर कभी ऐसा कर्म न करनेकी प्रतिज्ञा कर। साथ ही स्वामीजीसे जाकर माफी मॉग और उनसे दीक्षा ले। मैं भी वैष्णवी दीक्षा लूँगी।'

राजा घबराकर उठा और तुरत स्वामीजीके पास पहुँच चरणोमे गिरकर क्षमायाचना की। स्वामीजीने उसे आशीर्वाद दिया और सवेरे उसे तथा देवीजीको वैष्णवी दीक्षा दी। कहा जाता है, उस स्थानमे अब भी वैष्णवी देवीका सुप्रसिद्ध मन्दिर है। वहॉ अबतक जीव-बलिदान नहीं होता। फूल-बताशे चढते हैं।

इसके बाद आप वृन्दावन आये और गुरुदेव श्रीभट्टजीके आज्ञानुसार 'युगलशतक' पर संस्कृतमे भाष्य लिखा। स्वामीजीने संस्कृतमे कई मूलग्रन्थ भी लिखे। इनमे 'प्रसन्न-भाष्य' मुख्य है। 'दशश्लोकी' के अन्यान्य भाष्योंसे इसमे विशेषता यह है कि वेदके तत्त्वनिरूपणके अतिरिक्त उपासना-पर काफी जोर दिया गया है। व्रजभाषामे 'युगल शतक' नामक पुस्तकमे आपके सौ दोहे और सौ गेय 'पद' संगृहीत है, जो मिठासमे अपना जोड़ नहीं रखते। ऊपर दोहेमे जो बात सक्षेपमे कही है, वही नीचे 'पद' मे विस्तारसे कही गयी है। इस सम्प्रदायमे 'युगलशतक' पहली ही हिन्दी-रचना है, शायद इसीसे इसे आदिवाणी कहते हैं। और ये ही सर्वप्रथम उत्तरभारतीय सम्प्रदायाचार्य हैं। इनसे पहलेके सभी आचार्य शायद दाक्षिणात्य थे। स्वामीजी इस सम्प्रदायमे उस शाखाके प्रवर्तक हैं, जिसे 'रसिकसम्प्रदाय' कहते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण-के शृङ्गारी रूपकी उपासना ही इनका सर्वस्व है। श्रीहरिव्यास-देवजीका इतना प्रभाव हुआ कि श्रीनिम्बार्कसम्प्रदायकी इस शाखाके संतोको तबसे लोग 'हरिव्यासी' ही कहने लगे। वैष्णवोके चारो सम्प्रदायोमे इस सम्प्रदायके सत अब भी 'हरिव्यासी' ही कहलाते है।

भक्त-वाणी

त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत्। रतिमुद्वहतादद्धा गङ्गेवौघमुदन्वति॥ —कुन्ती

श्रीकृष्ण! जैसे गङ्गाकी अखण्ड धारा समुद्रमे गिरती रहती है, वैसे ही मेरी बुद्धि किसी दूसरी ओर न जाकर आपसे ही निरंतर प्रेम करती रहे।

भक्त हरिदासजी

लगभग दो सौ वर्षकी बात है। श्रीवृन्दावनमें यमुनातट-पर मनोरम स्थलीमें रामानन्दी वैष्णव महात्मा श्रीहरिदासजी महाराज अपने शिष्योंके साथ निवास करते थे। उस पुण्यभूमिकी शोभा विचित्र थी। महात्मा हरिदासजीको अलौकिक प्रेम प्राप्त था। हृदयमें केवल प्राणाधारके दर्शनोंकी ही प्रबल वासना थी। उठते-बैठते, सोते-जागते वे भगवान्के विरहमें प्रेमाश्रु बहाया करते थे। उत्कट उत्कण्ठाने बढ़ते-बढ़ते विशाल स्वरूप धारण कर लिया था। रात्रिमें जागरण करके भगवद्दर्शनोंकी प्रतीक्षा करते हुए वे भगवान्से प्रार्थना किया करते थे। उनके हृदयमें विरह और दीनताका मानो सागर ही उमड़ पड़ा। उस महासमुद्रमें महात्माजी डूब गये। विरहमें विह्वल होकर उन्होंने अपना सर्वस्व प्यारेको समर्पण कर दिया। दीनवत्सल, प्रेमसिन्धु, करुणानिधान भगवान् भी भक्तका विरह नहीं सह सके और तत्क्षण प्रकट हो गये। महात्माजी निर्निमेष नेत्रोंसे उनका दर्शन करने लगे।

मनोहर मुसकानयुक्त मुखारविन्दपर घुँघराले केश छिटक रहे थे। मणियोंसे मण्डित मुकुट दिव्य वर्णके पुष्पोंसे सुशोभित था। कानोंमें कुण्डल झलमला रहे थे। नेत्रोंमें मनोहारिणी चितवन थी। पीताम्बर श्यामल सुकुमार अङ्गोंपर झलक रहा था। वनमाला चरणोंतक लटक रही थी। महात्माजी इस रूपमाधुरीमें निमग्न हो गये। भगवान्ने चेत कराया। अपना कर-कमल मस्तकपर फेर दिया। महात्माजीने चरणों-पर मस्तक रख दिया। भगवान् अमृतमयी वाणीसे बोले—'तुम जगन्नाथपुरी जाओ। इस वर्ष आषाढ़में विग्रह-परिवर्तन होगा। पहला विग्रह तुम ले आओ और इसी स्थलपर वृन्दावनमें स्थापित करो। मैं सब प्रकारसे तुम्हारी रक्षा करूँगा।'

आज्ञा देकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। महात्माजी वियोगसे व्याकुल होकर छटपटाने लगे। भगवान्की आज्ञा-का स्मरण करके महात्माजीने धैर्य धारण किया और अपने सुयोग्य शिष्योंको साथ लेकर कीर्तन करते हुए जगन्नाथपुरीकी ओर चल दिये। बीहड़ वन, सर-सरिताएँ, पर्वत तथा कण्टकाकीर्ण मार्गको तै करते हुए चार महीनेमें महात्माजी जगन्नाथपुरी पहुँचे। मार्गका घोर परिश्रम पुरीमें पदार्पण करते ही दूर हो गया और हृदयमें दिव्य आनन्द भर गया। रथयात्राका महोत्सव तो था ही, दूसरे विग्रह-परिवर्तनका भी योग था। छत्तीस वर्षके पश्चात् जब दो आषाढ़ आते हैं, तब श्रीजगन्नाथजीके कलेवर बदले जाते हैं। बड़ी भारी प्रतिष्ठा होती है। यज्ञ होता है, वेदपाठ होता है और नाना प्रकारसे अभिषेक किया जाता है। इस प्रकार यह महोत्सवमें भी महोत्सव था। इस समय जगन्नाथपुरीमें लाखों यात्री दूर दूर देशोंसे आये हुए हैं। आनन्दका समुद्र उमड़ रहा है।

इसी समय हमारे श्रीहरिदासजी भी वहाँ आ पहुँचे। अभिषेक होनेमें चार दिन शेष थे। महात्माजीने पुजारियोंके पास जाकर अपना परिचय दिया और भगवान्-की आज्ञा उन्हें कह सुनायी। पुजारियोंने कहा—'हमको कुछ भी अधिकार नहीं है। आप राजा साहबसे मिलें।' श्रीमहात्माजी राजा साहबसे मिलने गये। राजा साहबने महात्माजीका तेजोमय मुखमण्डल देखकर उन्हें उठकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और प्रसन्न मनसे परिचय पूछकर आनेका कारण पूछा। महात्माजीने भगवान्की आज्ञा सुना दी। राजा साहबने कहा—'महाराज! सर्वदासे यही नियम चला आया है कि प्रथम विग्रह समुद्रमें प्रवाहित कर दिये जाते हैं। आज हम नयी प्रणाली कैसे चला सकते हैं। महाराज! हम

इस कार्यके लिये असमर्थ हैं। आपको भगवान्‌की आज्ञा हुई होगी, किंतु हमको तो भगवान्‌की आज्ञा नहीं हुई। अतएव क्षमा करें।'

महात्माजी—'राजन्! यदि विग्रह सागरमें प्रवाहित होंगे तो मेरा शरीर भी सागरमें प्रवाहित होगा; क्योंकि मैं अपनी इच्छासे नहीं आया हूँ।' राजा साहबने कुछ उत्तर नहीं दिया। महात्माजी समुद्रतटपर आकर प्रशान्त मनसे भगवान्‌का ध्यान करने लगे। अन्न-जल त्याग-कर एकाग्रचित्तसे उसी भुवन-मोहन रूपका स्मरण करने लगे, जिस रूपका वे प्रथम दर्शन कर चुके थे।

अर्धरात्रिका समय है। राजा अपने महलमें शयन कर रहे हैं। उन्होंने देखा, श्रीजगन्नाथजी प्रकट हुए हैं। उनके मुखारविन्दपर कुछ क्रोध झलक रहा है। मेघके समान गम्भीर वाणीसे बोले—'वे साधु मेरी आज्ञासे ही आये हैं। तुम भक्तोंका तिरस्कार करते हो? जाओ, उनसे क्षमा माँगो और उनकी आज्ञाका पालन करो। मेरा एक विग्रह अब वृन्दावनमें भी रहेगा।'

राजा साहब अत्यन्त भयभीत हो गये और जाग पड़े। थर-थर काँपते हुए शय्यासे उठकर कर्मचारियोंको उन महात्माजीका पता लगानेके लिये रात्रिमें ही आज्ञा दी। बहुत ढूँढ-खोजके अनन्तर पता लग गया। राजा साहब समुद्रतटपर उसी समय जाकर महात्माजीके चरणोंपर गिर पड़े और बारंबार क्षमा-याचना करने लगे।

अभिषेकके अनन्तर राजा साहबने एक विशाल रथमें श्रीजगन्नाथजी, श्रीबलदाऊजी, श्रीसुभद्राजीको विराजमान कराया। धन-धान्य तथा सेनाके साथ महात्माजीको विदा किया। रथके सहित धूम-धामसे कीर्तन करते हुए महात्माजीने कई महीनोंमें वृन्दावनमें पदार्पण किया। जिस स्थानपर स्वयं भजन करते थे, उसी सुरम्य स्थानपर एक सुन्दर मन्दिर बनवाकर महात्माजीने वे विग्रह स्थापित किये। वृन्दावनमें वही दिव्य स्थान, वही दिव्य विग्रह, वही सुन्दर मन्दिर आज भी वर्तमान है। सामने यमुनाजी बह रही हैं। नीचे घाट बना हुआ है, जिसे 'जगन्नाथघाट' कहते हैं। आज भी इस स्थानपर अपूर्व दिव्यता विराज रही है। भजनमें स्वाभाविक मन लगता है। शान्तिका साम्राज्य-सा छाया हुआ है।